22

अध्यारोप-अपवाद

प्रस्तावना

अद्वैत वेदान्त में जीव-ब्रह्म का अभेद प्रतिपादित है। ब्रह्म नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव का है। जीव ही ब्रह्म है। जीव तो अपने नित्य-शुद्ध स्वरूप को न जानते हुए सुख-लाभ के लिये बाह्य भोग की वस्तुओं के ग्रहण-रक्षण का महान कष्ट अनुभव करता है। जब जीव अनुभव द्वारा शास्त्र से अथवा आप्त वाक्य के श्रवण से भोग्य-वस्तुओं की अनित्यता को जानता है और वैराग्यवान होता है, तब अपने स्वरूप ज्ञान के लिये ब्रह्मज्ञ गुरू के समीप आता है। और गुरू करूणा युक्त होकर उसको ब्रह्म उपदेश देता है। परन्तु यदि गुरू संसार के दु:ख के उपशमन के लिये आए जीव को कहे कि यह दृश्यमान जगत मिथ्या है, शुक्ति के रूप के समान और वह ब्रह्म निष्कल, निर्विशेष और अवाङमनसगोचरम् (इन्द्रिय, मन द्वारा अग्राह्य) रूप को जानने में अयोग्य हो तो ये तत्व अनुभव विरोधी होने से शिष्य के मन में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं ही होंगे। अत: जैसे कथा के छल द्वारा बालक को तत्व बोधित होते हैं वैसे ही सहस्र माताओं द्वारा भी अधिक हितैषी श्रुति अध्यारोप-अपवाद न्याय द्वारा मुमुक्षु को ब्रह्म तत्व का उपदेश देती है। जगत् के विषय में शिष्य का वर्तमान बोध (ज्ञान) ही भित्ति रूप से स्वीकार करके दृश्यमान जगत के कारण रूप में गुरू ब्रह्म का निर्देश करते हैं। अत: शिष्य का तत्व बोध अनुभव के अनुसार होने से सम्यक् होता है। और उस श्रुति के ब्रह्म के मनन-निदिध्यासन रूप उपाय वर्णित होते हैं। और कहा गया है-

अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्चयते।
शिष्याणां बोधसिद्धयर्थं तत्वज्ञै: कल्पित: क्रम:॥

तत्वविदों के द्वारा शिष्यों के सुख से तत्व-बोध के लिये यह उपदेश प्रकार कल्पित है। इस पाठ में हम उपदेशविधि में अध्यारोप-अपवाद न्याय का गुरूत्व क्या है, अथवा इसका क्या स्वरूप है, यह विस्तार से जानेंगे।

टिप्पणी

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अध्यारोप-अपवाद न्याय की आवश्यकता को जान पाने में;
- अध्यारोप क्या है जान पाने में;
- अपवाद क्या है जान पाने में;
- अज्ञान का लक्षण जान पाने में;
- शरीरत्रय-कारण शरीर, सूक्ष्मशरीर, स्थूल शरीर को जान पाने में;
- पञ्चकोश को जान पाने में;
- सामान्य अध्यारोप को जान पाने में;
- विशेष अध्यारोप को जान पाने में;
- विशेष अध्यारोप का निरास जान पाने में;
- तत्व पदार्थ-शोधन को जान पाने में।

22.1 अध्यारोप क्या है?

वेदान्तसार ग्रन्थ में सदानन्दयोगीन्द्र अध्यारोप का लक्षण कहते हैं- ''असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद् वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोप:''। सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही वस्तु पद से कहा गया है। और अवस्तु अज्ञान है, उससे समुत्पन्न सकल कार्य और प्रपञ्च है। अत: वस्तु ब्रह्म पर अज्ञान अथवा उसके कार्यों का आरोप ही अध्यारोप है। यहाँ उदाहरण है- असर्पभूत रज्जु पर सर्प का आरोप। इसीलिए अल्प प्रकाशित मार्ग पर गिरी रस्सी में कोई साँप को देखता है और कहता है ''यह साँप है''। यह रस्सी और साँप परस्पर भिन्न हैं। रज्जु में रज्जुत्व है और सर्प में सर्पत्व। रज्जु सर्प नहीं होता और सर्प रज्जु नहीं होता है। तथापि अल्प आलोक (प्रकाश) में रज्जु पर अज्ञान के कारण पूर्ववर्ती सर्प के संस्कार के बोध से सर्प-भिन्न रज्जु में भी सर्प का आरोप होता है और रज्जु में सर्पज्ञान होता है। वैसे ही अज्ञान और उसके कार्य जड़ हैं और ब्रह्म उससे विपरीत चेतन है। ब्रह्म के स्वरूप का अज्ञान के कारण चेतन ब्रह्म में अचेतन अज्ञान अथवा उसके कार्यों का आरोप होता है। यही अध्यारोप कहलाता है।

22.2 अपवाद क्या है?

जिसमें आरोप होता है, वह अधिष्ठान है, और जिसका आरोप होता है वह आरोप्य कहलाता है। इसीलिए रज्जु अधिष्ठान है और सर्प आरोप्य है। अधिष्ठान के बिना आरोप नहीं होता है। ब्रह्म में प्रपञ्च के आरोप स्थल पर ब्रह्म ही अधिष्ठान है, और प्रपञ्च आरोप्य है। आरोप्य मिथ्या है। जो प्रतीत होता है और उत्तर ज्ञान द्वारा बाधित होता है, वह मिथ्या है। रज्जु में सर्प प्रतीत होता है, जब 'यह रज्जु है', ऐसा ज्ञान होता है, तब सर्प निवृत्त होता है, रज्जु मात्र अवशिष्ट रहता है। रज्जु ज्ञान होने पर पुनः सर्प की प्रतीति नहीं होती है। अतः रज्जु को देखकर सर्प मिथ्या है। अधिष्ठान के ज्ञान से ही आरोप्य के मिथ्या वस्तु की निवृत्ति होती है, अधिष्ठान मात्र अवशिष्ट रहता है। रज्जु में सर्प का आरोप होने पर रज्जु को सर्प के गुण अथवा दोष प्रवेश नहीं करते हैं। न ही रज्जु में सर्प का आरोप होने पर रज्जु विषययुक्त होता है, सर्प के मिथ्याभूत होने के कारण। इस प्रकार ब्रह्मरूप के अधिष्ठान के ज्ञान से आरोपितों के अज्ञान और उनके कार्यों की निवृत्ति होती है। अज्ञान और उनके कार्य मिथ्याभूत हैं।

कारण से कार्य उत्पन्न होता है। कारण ही कार्यरूप में प्रकाशित होता है। कारण का कार्यरूप अन्यथाभाव (अन्यरूपप्राप्ति) दो प्रकार का है- परिणाम और विवर्त। परिणाम ही विकार पद से कहा जाता है। कारण का अपने स्वरूप को त्यागकर अन्य रूप की प्राप्ति परिणाम अथवा विकार है। जैसे- दूध से दही उत्पन्न होता है। दूध कारण है और दही कार्य है। दूध अपने स्वरूप को त्यागकर दही रूप को प्राप्त करता है। अतः दूध का विकार अथवा परिणाम दही है। कारण के स्वरूप को परित्याग करके ही अन्यरूप की प्राप्ति विवर्त है। यथा रज्जु अपने स्वरूप को त्यागकर ही सर्प रूप में प्रतिभासित होती है। अतः सर्प रज्जु का विवर्त है। विकार और परिणाम का लक्षण वेदान्तसार में इस प्रकार उद्धृत है- ''सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदाहृतः। अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदाहृतः।।'' इस प्रकार ब्रह्म अपने स्वरूप को त्यागकर ही प्रपञ्च रूप में प्रतिभासित होता है। अतः यह परिदृश्यमान मिथ्याभूत प्रपञ्च ब्रह्म का विवर्त है। विवर्तस्थल पर मिथ्याभूत पदार्थ के उत्तर ज्ञान द्वारा बाध होने पर अधिष्ठान मात्र अवशेष रहता है।

इस प्रकार अविकृत रज्जु में सर्पाकार से भासमान रज्जु विवर्त का ''यह रज्जु है'', ऐसा अधिष्ठान ज्ञान होने पर यथा अधिष्ठान की रज्जु-रूप सी ही स्थिति होती है तथा ब्रह्म विवर्त अज्ञान आदि प्रपञ्च के ब्रह्म रूप अधिष्ठान का ज्ञान होने पर ब्रह्म-रूप-सी स्थिति अपवाद है। अतः कार्य का कारण मात्र सत्ताअन्वेषण और कारण-स्वरूप व्यतिरेक द्वारा कार्य की असत्ता-अवधारण ही अपवाद है। वेदान्तसार में सदानन्दयोगीन्द्र द्वारा कहा गया है-

''अपवादो नाम रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववत् वस्तुविवर्तस्य अवस्तुनः अज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्''। अतः जैसे रज्जुविवर्त सर्प का रज्जुमात्रत्व ही है वैसे हल अवस्तु ब्रह्मविवर्तभूतों और अज्ञान-उसके कार्यों की ब्रह्मरूप वस्तु मात्रता है, ऐसा प्रतिपादन ही अपवाद है।

टिप्पणी

22.3 अध्यारोप-अपवाद न्याय का प्रयोजन

जगत् का मिथ्यात्व प्रदर्शन और जगत् के कारण रूप से सत्य ब्रह्म का सूचन अध्यारोप-अपवाद प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है। आदि में अखिल जगत ब्रह्म से उद्भूत है, ऐसा प्रतिपादित है। और कार्य कारण में रहता है। अतः अखिल जगत् ब्रह्मनिष्ठ प्रतिपादित होता है। उससे ब्रह्म में श्रुति और युक्ति द्वारा जगत निषिद्ध है। ब्रह्म का जगत् का निषेध होने पर जगत् का सत्व ही व्याहत होता है। क्योंकि कारण ब्रह्म को छोड़कर अन्यत्र जगत की स्थिति नहीं ही होती है। अतः ब्रह्म में जगत का निषेध होने पर ब्रह्म को छोड़कर अन्यत्र जगत के अभाव से जगत का मिथ्यात्व हो जाता है। अध्यारोप-अपवाद न्याय का गौणफल तत्त्व पदार्थ शोधन है। यह विषय आगे स्फुटित होता है।

पाठगत प्रश्न 22.1

1. अध्यारोप का लक्षण क्या है?
2. अपवाद क्या है?
3. अधिष्ठान क्या है?
4. मिथ्याभूत आरोप्य की निवृत्ति कैसे होती है?
5. परिणाम क्या है?
6. विवर्त क्या है?
7. परिदृश्यमान इस प्रपञ्च का क्या अधिष्ठान है?
8. यह प्रपञ्च ब्रह्म का विवर्त है अथवा परिणाम?
9. अध्यारोपापवाद न्याय का मुख्य प्रयोजन क्या है?
10. अध्यारोपापवाद न्याय का गौण प्रयोजन क्या है?

22.4 सामान्य अध्यारोप वर्णन

परिदृश्यमान यह जगत ब्रह्म का विवर्त और अज्ञान का परिणाम है। अज्ञान जगत का परिणाम रूप उपादान हैं। और ब्रह्म जगत का विवर्त रूप उपादान है। अज्ञान ही जगत रूप में परिणत होता है, यथा दूध दही रूप में परिणत होता है। यथा अल्प अन्धकार में रज्जु का अज्ञान सर्पोत्पत्ति में कारण है, वैसे ही ब्रह्म स्वरूप का अज्ञान जगत् उत्पत्ति में कारण है। यह जगत् जड़, सुख, दुःख और मोह से अन्वित हैं। उससे इस जगत का परिणाम उपादान कारण भी कार्य के सदृश ही जड़, सुख-दुःख और

टिप्पणी

मोहान्वित हो। अतः जगत के परिणाम उपादान कारण रूप में जड़ के सुख, दुःख, मोहात्मक, सत्त्व-रज-तमोगुणत्रय से अन्वित अज्ञान का ग्रहण होता है। ब्रह्म विषयक अज्ञान का स्वरूप और उससे जगत-उत्पत्ति प्रक्रिया नीचे निर्दिष्ट है।

22.4.1 अज्ञान लक्षण विचार

सदानन्दयोगीन्द्र द्वारा अज्ञान लक्षण के विषय में वेदान्तसार में निगदित है- ''अज्ञानं तु सदसद्भ्याम् अनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधी भावरूपं यत्किञ्चित्'' सत् जो तीनों कालों में अबाधित है। अतीत-वर्तमान-भविष्यत् रूप कालत्रय में जो रहता है और जिसका इस कालत्रय में नाश नहीं होता है, वह सत् है। अज्ञान सत् नहीं है। यथा घट ज्ञान से परम घट विषयक अज्ञान नष्ट होता है वैसे ही ब्रह्मज्ञान से परम ब्रह्मविषयक अज्ञान नष्ट होता है। और अज्ञान असत् नहीं है। असत् प्रतीक है, सींग आदि। परन्तु ''अहमज्ञः'' इत्यादि स्थानों पर अज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, अतः अज्ञान असत् नहीं है। अलीक का कभी भी अथवा कहीं भी ज्ञान नहीं होता है। ना ही कोई कहीं भी सींग का साक्षात्कार करता है। और अज्ञान के सत्-असत् दोनों रूप नहीं है, एक ही धर्मी में असत् और सत् दो विरूद्ध धर्म नहीं रहते है। अतः अज्ञान सत् नहीं, असत् भी नहीं, अथवा असत्-सत् उभयात्मक नहीं किन्तु सद्सदुभयात्मक अनिर्वचनीय है। और अनिर्वचनीय का लक्षण कहा गया है -

''प्रत्येकं सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं च यत्।
गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवादिनः॥

विवेकचूड़ामणि में भगवान शंकराचार्य द्वारा भी उक्त है-

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो महाद्भूतानिर्वचनीयरूपा॥
(विवेकचूडामणि, 111)

अज्ञान, माया, अविद्या, पर्यायवाची हैं। अज्ञान त्रिगुणात्मक है। और वे गुण लोहित, शुक्ल और कृष्ण श्रुतियों में प्रतिपादित हैं। अज्ञान कार्य तेज, जल, पृथिवी, इन त्रिवृत्त करण द्वारा समुत्पन्न स्थूलभूतों में ये तीन गुण होने से उनकी कारणभूत माया भी त्रिगुणात्मिका है, ऐसा सिद्ध होता है। और आम्नात है- ''यदङ्ग लोहित रूपं तेजसस्तद्रूपं यत्शुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्य''।

गुणत्रय सत्त्व, रज और तम हैं। माया का त्रिगुणात्मकत्व श्रुति और भगवद्गीता में प्रतिपादित है। जैसे अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्, इस श्रुति में लोहित, शुक्ल, कृष्ण पदों द्वारा रज, सत्व और तम का निर्देश विहित है। और भगवद्गीता में- सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः, दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया, इत्यादि वचनों द्वारा माया निर्दिष्ट है। त्रिगुणात्मक अज्ञान से समुत्पन्न यह प्रपञ्च भी त्रिगुणात्मक होता है।

गुणत्रय से विशिष्ट होने से अज्ञान सत्य नहीं कहा जाता क्योंकि अज्ञान ज्ञान से बाधित होता है। ब्रह्मज्ञान से ही अज्ञान नष्ट होता है। अत: अज्ञान ज्ञान-विरोधी है। ज्ञान का अभाव ही अज्ञान है, ऐसा चिन्तन नहीं करना चाहिए। क्योंकि अज्ञान अभाव रूप नहीं है। अज्ञान अभावरूप हो तो अज्ञान से भावरूप जगत की उत्पत्ति सम्भव नहीं होती। ना ही अभाव से भाव पदादि की उत्पत्ति होती है। अहम् अज्ञ: इत्यादि अनुभव में अज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञात होता है। अज्ञान यदि अभावरूप हो तो उसका अनुपलब्धि प्रमाण से ज्ञान होता, प्रत्यक्ष से नहीं। अज्ञान सींग/शृंग न्याय से यह इस प्रकार है, ऐसा पिण्डीकृत करके प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। अत: ''यत्किञ्चित्' अज्ञान का विशेषण दिया गया है।

22.4.2 कारण शरीर

अज्ञान समष्टि अभिप्राय से एक और व्यष्टि अभिप्राय से अनेक कहा जाता है। वृक्षों का समष्टि रूप वन होता है और जल बिन्दुओं का समष्टि रूप जलाशय। जब वक्ता समष्टि को कहने की इच्छा करता है तब वन और जलाशय कहता है और जब व्यष्टि को कहने की इच्छा करता है तब वृक्ष और जल कहता है। जल बहुत हैं, अत: जीवगत अज्ञान भी बहुत है। उस अज्ञान का समष्टि-अभिप्राय से समष्टि ज्ञान, यह व्यवहार है। इस समष्टिज्ञान में सत्त्व गुण का बहुत आधिक्य दिखता है, यहाँ सत्त्वगुण रजस् और तमस् से अभिभूत नहीं होता है। अत: अज्ञान की समष्टि विशुद्ध सत्त्व प्रधान है। सत्त्व गुण के आधिक्य के कारण समष्टि ज्ञान को उत्कृष्ट उपाधि कहा जाता है। अज्ञान के व्यष्टि अभिप्राय से व्यष्टि ज्ञान, ऐसा व्यवहार है। व्यष्टि ज्ञान में सत्त्व-गुण का प्राधान्य है, परन्तु वैसा नहीं जैसा समष्टि ज्ञान में। सत्त्व व्यष्टि ज्ञान में रजस् और तमस् के अभिभूत होता है। अत: व्यष्टि ज्ञान मलिन सत्त्व प्रधान और निकृष्ट उपाधि रूप। समष्टि ज्ञानोपहित चैतन्य ही ईश्वर है। ईश्वर ही सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, अव्यक्त, अन्तर्यामी और जगत का कारण है। ईश्वर ही सभी अज्ञान का अवभासक है। व्यष्टि ज्ञानोपहित चैतन्य ही प्रज्ञ कहलाता है। और प्रज्ञ एक अज्ञान का अवभासक है। और मलिन सत्त्व प्राधान्य के कारण व्यष्टि ज्ञान अस्पष्टोपाधि है और उसके कारण अनतिप्रकाशक होता है।

ईश्वर का उपाधिरूप समष्टि ज्ञान और प्रज्ञ का उपाधिरूप व्यष्टि ज्ञान कारण शरीर, आनन्दमयकोश और सुषुप्ति कहा जाता है। समष्टि ज्ञान सकल जगत का कारण है, ब्रह्म ज्ञान से शीर्यमाणत्व होने से शरीर है, अत: यह कारण शरीर कहा जाता है। और व्यष्टि ज्ञान अहंकार आदि का कारण और ब्रह्म ज्ञान से शीर्यमाणत्व होने से शरीर है, अत: व्यष्टि ज्ञान भी कारण शरीर कहा जाता है। इस कारण शरीर के कारण अज्ञान से ही स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्च उत्पन्न होता है। कारण से कार्य उत्पन्न होता है और विनाश के अनन्तर कार्य कारण में लीन होता है, ऐसा नियम है। अत: सूक्ष्म स्थूल प्रपञ्च भी कारण शरीर अज्ञान में ही लीन होता है। अत: कारण शरीर का सुषुप्ति नाम है, उसमें समस्त प्रपञ्च लय दर्शन के कारण। कारणतव अवस्था, सुषुप्ति अथवा प्रलयकाल

में स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्च के अभाव से जीव आनन्द बाहुल्य का अनुभव करता है और यह ज्ञान कोशवत् ब्रह्म को आच्छादित करता है। अतः कारण शरीर आनन्दमयकोश कहा जाता है।

वन वृक्ष का अभेद होता है, वृक्ष वन से भिन्न नहीं है। इस प्रकार वनाकाश और वृक्षाकाश का अभेद होता है, वृक्ष में विद्यमान आकाश वन में विद्यमान आकाश से भिन्न नहीं है, वन और वृक्ष के अभेद के कारण। एवं समष्टि-व्यष्टि ज्ञान रूप वन-वृक्ष के अभेद के समान, ईश्वर-प्रज्ञ के चैतन्य स्वरूप होने से वन-वृक्ष अवच्छिन्न आकाश का अभेदवत् अभेद बोध्य है। अज्ञान से अनुपहित जो चैतन्य है वह तुरीय चैतन्य कहलाता है। यथा वनाकाश और वृक्षाकाश का आधारभूत एक महाकाश होता है, इस प्रकार समष्टि ज्ञान से उपहित चैतन्य और व्यष्टि ज्ञान से उपहित चैतन्य का आधारभूत एक चैतन्य होता है, जो किसी उपाधि से संस्पृष्ट नहीं रहता है। वही आधारभूत चैतन्य तुरीय कहलाता है। और इस अज्ञान की दो शक्तियाँ होती है- आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति। यथा अल्प मेघ अनेक योजन में विस्तृत सूर्य को आवृत कर लेता है, द्रष्टा के नेत्र बन्द कर लेने से। वैसे ही अज्ञान आवरणशक्ति द्वारा अपरिच्छन्न होकर भी आत्मा जीव की बुद्धि को आवृत करके आच्छादित करता है। यथा रज्जु विषयक अज्ञान आवृत रज्जु में स्व शक्ति से सर्प आदि को उद्भावित (उत्पन्न) करता है एवं अज्ञान भी आवरण शक्ति से आवृत आत्मा में विक्षेप शक्ति द्वारा आकाश आदि प्रपञ्च को उत्पन्न करता है।

आवरण और विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान से उपहित चैतन्य (ईश्वर) जगत का निमित्त और उपादान होता है। ईश्वर ही चैतन्य प्रधानता से जगत का निमित्त होता है और जड़ उपाधि की प्रधानता से उपादान होता है। यथा लूताकीट (मकड़ी) अपने चैतन्य दृष्टि से तन्तुओं का निमित्त होता है और अपनी शरीर की प्रधानता से तन्तुओं का उपादान होता है। अतः ईश्वर ही जगत का अभिन्न निमित्त और उपादान कारण है। और मुण्डकोपनिषद् में विहति है-

''यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरूषात् केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवतीह नित्यम्'॥

पाठगत प्रश्न 22.2

1. जगत का परिणाम उपादान कारण क्या है?
2. जगत का विवर्त उपादान कारण क्या है?
3. अज्ञान का लक्षण क्या है?
4. त्रिगुणात्मक अज्ञान के गुणत्रय क्या हैं?

5. अज्ञान किस प्रमाण से गृहीत होता है?
6. कारण शरीर क्या है?
7 ईश्वर क्या है?
8. प्राज्ञ क्या है?
9. कारण शरीर को आनन्दमयकोश क्यों कहते हैं?
10. तुरीय चैतन्य क्या है?
11. अज्ञान की दो शक्तियाँ कौन-सी है?
12. ईश्वर जगत का निमित्त कारण और उपादान कारण कैसे होता है?

22.4.3 सूक्ष्म शरीर

तमः प्रधान विक्षेप शक्ति से विशिष्ट अज्ञान से उपहित चैतन्य से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी उत्पन्न होती है। और इन भूतों में जड़ता के अधिक दर्शन से जड़ हेतु भूत तमस की प्रधानता कारण में स्वीकार की जाती है। और तैत्तिरीयोपनिषद् में आम्नात है- ''तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भयः पृथिवीः''। गुणत्रय विशिष्ट अज्ञान से उत्पन्न इन भूतों में भी गुणत्रय होते हैं। ये सूक्ष्मभूत तन्मात्रा कहलाते हैं। इन सूक्ष्म भूतों द्वारा जीव का व्यवहार सम्भव नहीं होता है। इन सूक्ष्मभूतों से सूक्ष्मभूत और स्थूलभूत उत्पन्न होते हैं।

आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों के सात्विक अंश व्यष्टियों से पृथक्-पृथक् श्रोत्र-त्वक्-नेत्र (आक्षि)-रसना-घ्राण, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ क्रम से उत्पन्न होती हैं। इन पञ्चसूक्ष्मभूतों के सूक्ष्मांश से मिलकर अन्तः करण उत्पन्न होता है। निश्चयात्मिका अन्तः करण वृत्ति ही बुद्धि कहलाती है और संकल्पविकल्पात्मिका अन्तः करण वृत्ति मन कहलाती है। अन्तः करण वृत्ति भेद चित्त और अहंकार में इन बुद्धि और मन का अन्तर्भाव है। चित्र स्मरणात्मिका अन्तः करण वृत्ति है। और अहंकार अभिमानात्मिका अन्तः करण वृत्ति है। चित्त का बुद्धि में अन्तर्भाव होता है और अहंकार का मन में। आकाश आदि पाँच भूतों के रजो अंश व्यष्टियों से क्रम पूर्वक वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ नामक पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती है। आकाश आदि पञ्चभूतों के रजो अंश से मिलकर पञ्च प्राण उत्पन्न होते हैं। और पञ्च प्राण हैं- प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय पाँच प्राण हैं, ये भी कुछ कहते हैं। ऊर्ध्वगमनशील नासिका अग्रवर्ती वायु प्राण है, अधोगमनशील पायु आदि स्थायी वायु अपान है, सर्वनाड़ी गमनशील अखिलशरीरस्थ वायु व्यान है, ऊर्ध्व उत्क्रमणशील कण्ठस्थित वायुः उदान है, शरीर मध्यगत अन्य रस आदि का समीकरण कर वायु समान है। कुछ पुनः अन्य पाँच वायु नाग-कूर्म-कृकर-देवदत्त-

धनञ्जय नामक वायु को स्वीकार करते हैं। उसमें नाग नामक वायु उद्गिरणकर, कूर्म उन्मीलनकर, कृकर क्षुधाकर, देवदत्त जृम्भागकर, और धनञ्जय पोषणकर है। इन पाँच वायु का प्राण आदि में ही अन्तर्भाव है, ऐसा कुछ कहते हैं। सूक्ष्म शरीर सत्रह अवयवों से विशिष्ट है। सूक्ष्म शरीर को ही लिंग शरीर भी कहते हैं। प्रत्यगात्मा का अनुमापन करता है, इस कारण से सूक्ष्मशरीर का नाम लिङ्ग शरीर भी है। लिङ्ग शरीर के सत्रह (17) अवयव हैं- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि, मन, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच वायु।

इनमें पुनः ज्ञानेन्द्रियाँ पञ्चक सहित बुद्धि विज्ञानमयकोश कहलाते हैं। यह विज्ञानमयकोश ही लोक-लोकान्तर और देह-देहान्तर में चलता है और कर्तृत्व-भाक्तृत्व-सुखित्व-दुःखित्व अभिमानयुक्त होता है। विज्ञानमय कोश ही जीवपद वाच्य है। ज्ञानेन्द्रियसहित मन मनोमय कोश होता है। प्राणादि पञ्चक और कर्मेन्द्रिय पञ्चक सहित प्राणमय कोश होता है। प्राणमय कोश क्रियात्मक है, अतः रजो अंश से समुत्पन्न है, ऐसा निर्धारित होता है। इन तीनों कोशों में विज्ञानमय-मनोमय-प्राणमय में विज्ञानमय ज्ञान शक्तिमान कर्तृरूप, मनोमय इच्छाशक्तिमान करणरूप और प्राणमय क्रियाशक्तिमान कार्यरूप होता है। और कार्यभेद से इन कोशों का विभाग है। ये तीन कोश मिलकर ही सूक्ष्म शरीर होते हैं।

सूक्ष्म शरीर स्थल पर भी समष्टि-व्यष्टि बुद्धि प्रवर्तित होती है। समष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य ही सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ अथवा प्राण कहलाता हैं व्यष्टि सूक्ष्मशरीर उपहित चैतन्य तैजस कहलाता है। तेजोमय अन्तः करण के उपाधि रूप में वर्तमान होने से इस प्रकार का अभिधान होता है। सूक्ष्म शरीर स्थूल प्रपञ्च की अपेक्षा सूक्ष्म होने से सूक्ष्म, और ब्रह्म ज्ञान से शीर्यमाण होने से शरीर है। यह स्वप्न जाग्रत, वासनायुक्त होने के कारण, स्थूल प्रपञ्च का इसमें ही लय होने से यह स्थूल प्रपञ्च 'लय स्थान' कहलाता है। हिरण्यगर्भ और तैजस स्वप्नकाल में मनोवासना निर्मित सूक्ष्म विषयों का अनुभव करता है।

पाठगत प्रश्न 22.3

1. आकाश आदि पाँच भूत किससे उत्पन्न होते हैं?
2. आकाश आदि पञ्च सूक्ष्मभूतों के सात्विक अंशों से क्या उत्पन्न होता है?
3. मन क्या है?
4. बुद्धि क्या है?
5. चित्त-अहंकार का कहाँ अन्तर्भाव होता है?
6. कर्मेन्द्रियाँ कहाँ से उत्पन्न होती है?
7. पञ्च प्राण कहाँ से उत्पन्न होते हैं?

8. पञ्च प्राण क्या हैं?

9. सूक्ष्म शरीर में कितने अवयव हैं और वे क्या हैं?

10. विज्ञानमय कोश क्या है?

11. प्राणमय कोश क्या हैं?

12. मनोमय कोश क्या है?

13. हिरण्यगर्भ क्या है?

14. तैजस क्या है?

22.4.4 स्थूल शरीर

आकाश आदि पञ्चसूक्ष्मभूतों के पञ्चीकरण से स्थूलभूतों की समुत्पत्ति होती है। आकाश आदि पाँचों भूतों में प्रत्येक सम दो प्रकार का विभक्त होकर, प्रत्येक भूत के आद्य भागों को पुनः चार प्रकार से विभक्त करके, उन चारों के आद्य भागांशों की अपने-स्वेतर द्वितीयांशों के साथ योजना द्वारा पञ्चीकरण होता है। इसीलिए कहा जाता है-

''द्विधा विधाय चैकैंक चतुर्धा प्रथमं पुनः।
स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात् पञ्च पञ्च ते॥''

एवं पञ्चीकरण से पञ्च स्थूल भूत आविर्भाव होते हैं। पञ्चीकरण से अनन्तर प्रत्येक स्थूलभूत में पाँच भूतों के विद्यमान होने से उनका अभिधान हो तो कहते हैं जिस समुदाय में जिस भूत का भाग अधिक हो उसका उसके ही द्वारा नाम अभिधान होता है। जैसे जिस समुदाय में पृथिवी का भाग अधिक हो उस समुदाय का पृथिवी, इस प्रकार जल, तेज, वायु, आकाश, ये नाम बोध्य होते हैं। ब्रह्मसूत्र में बादरायण द्वारा यह अर्थ सूचित है- ''वैशेष्यात् तद्वादस्तद्वादः'' ऐसा सूत्र से है। पञ्चीकरण व्यापक श्रुति के अभाव का प्रामाण्य नहीं है, ऐसा अशंकनीय है। ''तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि'', इत्यादि त्रिवृत्करण श्रुति से पञ्चीकरण को भी उपलक्षित होने के कारण। आकाश से वायु, वायु से अग्नि इत्यादि वाक्यों से श्रुतार्थापत्ति द्वारा आकाश, वायु का भी पञ्चीकरण सिद्ध होता है।

स्थूलभूतों में आकाश में शब्द अभिव्यक्त होता है, वायु में शब्द-स्पर्श, अग्नि में शब्द-स्पर्श-रूप, जल में शब्द-स्पर्श-रूप-रस- और पृथिवी में शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध। इन पञ्चीकृत स्थूलभूतों के द्वारा सात ऊर्ध्वलोक और सात अधोलोक उत्पन्न होते हैं। और स्थूलभूतों से ब्रह्माण्ड के अर्न्तगत स्थूलशरीररों की और स्थूलशरीर से भोग्य अन्न-पान आदि की समुत्पत्ति होती है। सात ऊर्ध्वलोक हैं- भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्यम् तथा सात अधोलोक हैं- अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल। चार प्रकार के स्थूल शरीर हैं- जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज।

जरायुज शरीर जरायु से उत्पन्न हैं यथा मनुष्य, पशु आदि शरीर। अण्डज शरीर अण्डों से उत्पन्न हैं, पक्षी, सर्प आदि शरीर। स्वेजद शरीर स्वेद से उत्पन्न, यूक, मशक आदि शरीर। और उद्भिज भूमि से उत्पन्न होते हैं, लता, वृक्ष आदि।

प्रत्येक जीव से शरीर भिन्न होते हैं। और जब इन स्थूल शरीरों की समष्टि विवक्षा होती है तब समष्टि स्थूल शरीर व्यपदिष्ट है, और जब व्यष्टि विवक्षा होती है तब व्यष्टि स्थूल शरीर व्यपदिष्ट है। समष्टि स्थूल शरीर उपहित चैतन्य वैश्वानर अथवा विराट् कहलाता है। सभी नरों के अभिमानित्व से समष्टि स्थूल शरीर उपहित चैतन्य का वैश्वानर और विविध राजमानत्व से विराट नाम है। व्यष्टि स्थूल शरीर उपहित चैतन्य विश्व कहलाता है। सूक्ष्म शरीर अभिमान को त्यागकर ही स्थूल शरीर में प्रविष्ट होने से विश्वत्व है। और स्थूल शरीर अन्न रूप विकार है, इससे ही स्थूल शरीर की वृद्धि होती है। अतः इसका अन्नमयकोश अभिधान है। इस शरीर के द्वारा स्थूल विषयों के ही भोग सम्भव होते हैं, उसके कारण यह स्थूल शरीर कहलाता है। स्थूलभोगायतन होने से स्थूल शरीर का नाम जाग्रत है।

जाग्रत अवस्था में विश्व-वैश्वानर श्रोत्र-त्वग्-नेत्र-रसना और घ्राण द्वारा शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध को, वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ द्वारा वचन-आदान-गमन-विसर्ग-आनन्द को, मन-बुद्धि-अहंकार रूप चित्त द्वारा संकल्प निश्चय-अहंकार रूप चैत्त को अनुभव करते हैं। श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ क्रम से दिग्-वातार्क-वरूण-अश्व द्वारा नियन्त्रित होती हैं। और मन-बुद्धि-अहंकार रूप चित्त चन्द्र-चतुर्मुख ब्रह्म-शंकर-अच्युत द्वारा नियन्त्रित होते हैं। पूर्ववत् समष्टि-व्यष्टि स्थूल शरीरों का वन, वृक्ष रूप भेदवत्, और वैश्वानर-विश्व के वनाकाश-वृक्षाकाश अभेदवत् अभेद बोध्य हैं।

एवं इन स्थूल-सूक्ष्म-कारण प्रपञ्चों की समष्टि एक महान् प्रपञ्च होती है। यथा बहुत से अवान्तर वन मिलकर एक महावन होते हैं, उसी प्रकार।

22.5 विशेषाध्यारोप

ब्रह्म में सामान्यतः महाप्रपञ्च अध्यारोप वर्णित है। अब प्रत्यगात्मा में विशेषध्यारोप प्रतिपादित है। पुत्रत्व आदि बाह्य धर्मों का आत्मभिन्न शरीर आदि का आत्मा में अध्यारोप से 'अहम् इदं', 'मम इदम्' इत्यादि व्यवहार होते हैं। यही विशेष-अध्यारोप है। जैसे-आत्मा वै जयते पुत्रः इत्यादि श्रुति को देखकर विप्रतिपन्न कुछ प्राकृत चार्वाक स्वयं के ही पुत्र में प्रेमदर्शन से पुत्र के पुष्ट और नष्ट होने पर 'अहमेव पुष्टो नष्टः' इत्यादि अनुभव से पुत्र ही आत्मा हैं, ऐसा कहते हैं। कुछ चार्वाक पुनः 'स वा एष पुरूषोऽन्नरसमय' इत्यादि श्रुति प्रमाण से जलते हुए घर से पुत्र का त्यागकर भी लोगों को बाहर जाता देखकर और कुछ मैं स्थूल हूँ, मैं कृश (पतला) हूँ इत्यादि व्यवहारों को देखकर आत्मा स्थूल शरीर है, ऐसा कहते हैं। अन्य चार्वाक ''ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुः' इत्यादि श्रुति को देखकर, इन्द्रियों के अभाव में शरीर के चलन का अभाव को देखकर और 'काणोऽहं

टिप्पणी

वधिरोऽहम्' इत्यादि अनुभव के कारण इन्द्रियाँ ही आत्मा हैं, ऐसा कहते हैं। अन्य कुछ चार्वाक 'अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः' इत्यादि श्रुति के दर्शन से, मन में सुप्त प्राण आदि के अनुभव के अभाव से 'अहं संकल्पवान्' अहं विकल्पवान् इत्यादि अनुभव से मन ही आत्मा है, ऐसा कहते है। योगाचार बौद्ध कर्ता के अभाव में करणों के प्रवृत्त्यभाव के कारण और 'अहं कर्ता, अहं भोक्ता' इत्यादि अनुभव से बुद्धि ही आत्मा है, ऐसा कहते हैं। 'अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमय' यह श्रुति भी उनके द्वारा प्रमाणरूप में प्रदर्शित है। प्रभाकर और तार्किक बुद्धि आदि के अज्ञान में लय दर्शन से और अहम् अज्ञः इत्यादि अनुभव से अज्ञान आत्मा है, ऐसा कहते हैं। इस मत को बल देने हेतु 'अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमयः' यह श्रुति को वे उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं। भाट्टमीमांसक अज्ञानोपहित चैतन्य को ही आत्मा कहते हैं। क्योंकि सुषुप्ति में ज्ञान-अज्ञान दोनों ही रहते हैं, अतः मुझे मैं नहीं जानता हूँ, ऐसा अनुभव होता है। यहाँ मत को बल देने हेतु श्रुति वाक्य है- 'प्रज्ञानधन एवानन्दमय आत्मा'। शून्यवादि बौद्धों के मत में शून्य ही आत्मा, 'अहं सुषुप्तौ न आसम्' ऐसा सोकर उठने वाले का अनुभव होने से और 'असदेवेदमग्र आसीत्' इत्यादि श्रुति से। इस प्रकार आत्मा में पुत्र-शरीर-इन्द्रिय-मन-बुद्धि-अज्ञान उससे उपहित चैतन्य-शून्य-अनात्म वस्तुओं के अध्यारोप से विविध अभिमान भ्रमभूत उत्पन्न होते हैं।

22.5.1 विशेष अध्यारोप का निरास

पुत्र से आरम्भ होकर शून्य पर्यन्त विषय आत्मा से भिन्न ही है। पुत्र आदि का आत्मत्व प्रतिपादित करने के लिए जो श्रुति-युक्ति-अनुभव प्रदर्शित हैं वे श्रुति-युक्त-अनुभव आभास ही हैं, यथार्थ नहीं। और पूर्व-पूर्व युक्तियों का उत्तरोत्तर युक्तियों द्वारा खण्डन अध्यारोप प्रतिपादन काल में ही विहित है। पुत्र से आरम्भ होकर शून्य पर्यन्त ज्ञानविषय और जड़ होने से अनात्मत्व है और उसके करण मिथ्यात्व स्फुटित है। 'प्रत्यगस्थूलः अचक्षुः अप्राणः, अमनाः अकर्ताः चैत्न्यं चिन्मात्र सत्' इत्यादि प्रबल श्रुति विरोध से मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा विद्वानों के अनुभव के प्रामाण्य से पूर्वोक्त श्रुति-युक्ति-अनुभव आभासों का बाध है। प्रत्यगात्मा नितय, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव पूर्वोक्त विषयों का प्रकाशक है।

22.5.2 स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपञ्च अपवाद से कारणभूत ब्रह्म का निर्णय (सामान्याध्यारोप का निरास)

कार्य कारण में आश्रित रहता है ऐसा पूर्व में प्रतिपादित है। शास्त्र द्वारा अध्यारोप के प्रतिपादन का मुख्य उद्देश्य कार्यप्रपञ्च द्वारा कारणभूत ब्रह्म का निर्देश है। अब अपवाद द्वारा कार्यप्रपञ्च द्वारा कारणभूत ब्रह्म प्रतिपादित करते है। जैसे स्थूल भोगायतन चार प्रकार के स्थूल शरीर, भोग्य रूप अन्न-पान आदि, चौदह भुवन और उसका आश्रय ब्रह्माण्ड कारणरूप पञ्चीकृत भूतमात्र होते हैं। एवं शब्द आदि सहित पञ्चीकृत भूत सूक्ष्म शरीर

से उत्पन्न ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, प्राण और अन्तः करण अपञ्चीकृतभूतमात्र होते हैं। त्रिगुणात्मक और अपञ्चीकृतभूत कारणभूत अज्ञानोपहित चैतन्यमात्र होते हैं। कारण शरीर, अज्ञान, अज्ञानोपहित चैतन्य और ईश्वर आदि उपहित चैतन्याधारभूत अनुपहित चैतन्यरूप तुरीय ब्रह्ममात्र होता है।

22.6 अध्यारोपापवाद द्वारा तत्व-पदार्थ शोधन

'तत्त्वमसि' इस महावाक्य द्वारा जीव-ब्रह्म का ऐक्य प्रतिपादित होता है। तत्-त्वम् पद में लक्षण द्वारा चैतन्य मात्र बोधित है। अध्यारोप के आलोचन द्वारा तत् त्वम् पदों का अभिहितार्थ और लक्ष्यार्थ का ज्ञान सुखपूर्वक होता है। जैसे वृक्ष पर जलसेक किया जाता है तो उसमें स्थित तृण भी सिक्त होते हैं, वैसे ही कारणभूत ब्रह्म की सूचना के लिए अध्यारोपापवाद न्याय में प्रयुक्त होने पर भी वह तत्-त्वम् पदार्थ शोधन भी विदीध होता है। अतः तत्-त्वम् पदार्थ शोधन अध्यारोप-अपवाद का गौण प्रयोजन है। इसीलिए समष्टि ज्ञान और उससे उपहित चैतन्य (ईश्वर) और उससे अनुपहित चैतन्य (तुरीय) - इस अभेद से प्रतीयमान यह उस पद के वाच्यार्थ होते हैं। यथा-तत्प अयस (लौह) में आस और अग्नि का भेद नहीं जाना जा सकता है। तब 'अयो दहति', ऐसा व्यवहार होता है। इस प्रकार समष्टि ज्ञान ईश्वर तुरीर और चैतन्य के अभेद से प्रतिभासित उस पद का वाच्यार्थ होता है। उस पद का लक्ष्यार्थ अज्ञान द्वारा अनुपहित सकल आधारभूत तुरीय चैतन्य है।

इस प्रकार व्यष्टि ज्ञान और उससे उपहित चैतन्य (प्राज्ञ) और उससे अनुपहित तुरीय चैतन्य है- यह तीन तत्पतायः पिण्डवत् अभेद द्वारा भासमान त्वम् पद का वाच्यार्थ होता है। व्यष्टि ज्ञान से अनुपहित तुरीय और चैतन्य त्वम् पद का लक्ष्यार्थ होता है। एवं 'तत्' पद का भी लक्ष्यार्थ तुरीय चैतन्य, 'त्वम्' पद का भी लक्ष्यार्थ तुरीय चैतन्य है। और उससे तत्-त्वम् पद का तुरीय चैतन्य मात्र बोधकत्व समाहित होता है। और वही तात्पर्य तत्वमसि महावाक्य का है। अतः ब्रह्म-जीव का तत्वम् (तत् और त्वम्) पदवाच्य का भेद नहीं है, ऐसा समापन होता है।

पाठगत प्रश्न 22.4

1. स्थूलभूतों की उत्पत्ति कहाँ से और किससे होती है?
2. पञ्चीकरण क्या है?
3. सात ऊर्ध्वलोक क्या हैं?
4. स्थूल शरीर कितने प्रकार के हैं और वे क्या हैं?
5. सात अधोलोक क्या हैं?

6. स्वेजद शरीर क्या है?
7. वैश्वानर अथवा विराट् क्या है?
8. व्यष्टि स्थूल शरीरोपहित चैतन्य का क्या अभिधान है?
9. मन, बुद्धि अहंकार रूप चित्त किन देवों के द्वारा नियन्त्रित होते हैं?
10. शून्य ही आत्मा है, ऐसा किनका मत है?
11. भाट्ट मीमांसकों के मत में आत्मा क्या है?
12. 'तत्' पद का वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ क्या है?
13. 'त्वम्' पद का वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ क्या है?

पाठसार

ब्रह्मतत्व का उपदेश देते हैं। अध्यारोप अपवाद न्याय का मुख्य प्रयोजन सकल प्रपञ्च कारण ब्रह्म का निर्देश ही है और गौण प्रयोजन तत्वमपदार्थ शोधन है। वस्तु ब्रह्म में अवस्तु अज्ञान और उसके कार्य प्रपञ्च का आरोप अध्यारोप है। अपवाद ब्रह्मविवर्त और अज्ञान तथा उसके कार्य प्रपञ्च का ब्रह्ममात्र प्रतिपादन है। और अध्यारोप सामान्याध्यारोप और विशेषाध्यारोप, इन दो प्रकार का प्रदर्शित है। ब्रह्म में अज्ञान का तथा उससे उत्पन्न स्थूल-सूक्ष्म शरीरों का आरोप ही सामान्याध्यारोप है। विशेष-अध्यारोप तो पुत्र, शरीर आदि का तथा ब्रह्मधर्मों का आत्मा में अध्यारोप है।

सामान्याध्यारोप में आदि में गुणत्रयात्मक अज्ञान का प्रत्येक जीव में भिन्न होना, समष्टि विवक्षा तथा व्यष्टि विवक्षा द्वारा समष्टि ज्ञान और व्यष्टि ज्ञान रूप व्यवहार है। समष्टि ज्ञानोपहित चैतन्य ईश्वर कहलाता है, और व्यष्टि ज्ञानोपहित चैतन्य प्राज्ञ है। यह अज्ञ ही कारण शरीर और आनन्दमयकोश को व्यपदिष्ट करता है। ईश्वर-प्राज्ञ रूप उपहित चैतन्यों का आधारभूत जो अनुपहित चैतन्य है वह तुरीय कहलाता है। और अज्ञान की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियाँ होती है। अज्ञान आवरण शक्ति द्वारा ब्रह्म स्वरूप को ढ़क लेता है और विक्षेप शक्ति द्वारा आवृत ब्रह्म में जगत का सृजन करता है। जैसे तमः प्रधान विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान से आकाश-वायु-तेज-जल-पृथिवी रूप पञ्च सूक्ष्मभूत उत्पन्न होते हैं। ये सूक्ष्मभूत भी तीनों गुणों से विशिष्ट हैं। इन भूतों के सात्विकांशों से श्रोत्र-त्वग्-अक्षि (नेत्र)-रसन-घ्राण नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। सूक्ष्मभूतों के सात्विकांशों से मिलकर अन्तः करण उत्पन्न होता हैं संकल्प-विकल्पात्मिका अन्तः करण वृत्ति मन, और निश्ययात्मिका अन्तः करण वृत्ति बुद्धि है।

चित्त और अहंकार अन्तः करणवृत्ति भेदों में मन-बुद्धि का अन्तर्भाव होता है। आकाश आदि सूक्ष्मभूतों में रजो अंशों से वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ नामक पञ्च कर्मेन्द्रियाँ

और मिलने से पञ्च प्राण समुत्पन्न होते हैं। एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च प्राण, मन और बुद्धि, ये सत्रह अवयवों द्वारा सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होता है। प्रति जीव सूक्ष्म शरीर भिन्न होते हैं। उन सूक्ष्म शरीरों का समष्टि विवक्षा से समष्टि सूक्ष्म शरीर और व्यष्टि विवक्षा से व्यष्टि सूक्ष्म शरीर, ऐसा व्यपदेश है। समष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य हिरण्यगर्भ, व्यष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य तैजस है। सूक्ष्म शरीर में ही तीन कोशों, विज्ञानमय-मनोमय-प्राणमय रूप का अन्तर्भाव होता है। जैसे बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर विज्ञानमयकोश, मन और ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर मनोमय कोश और पञ्चप्राण और कर्मेन्द्रियाँ सहित प्राणमय कोश होता है।

इन आकाश आदि पञ्चसूक्ष्मभूतों के पञ्चीकरण से स्थूलभूत उत्पन्न होते हैं। और पञ्चीकरण प्रत्येक भूत का पञ्चात्मकत्व विधान है, सचरित्र भूतों का अनुपात मूलपाठ में दिया गया है। जिस भूत समुदाय में जिस भूत का आधिक्य है, उसका वही अभिधान है। पञ्चीकरण द्वारा समुत्पन्न स्थूलभूतों से सात ऊर्ध्वलोक, सात अधोलोक, उन लोकोचित चार प्रकार के शरीर, और उन लोकों में भोग्य अन्न, पान आदि समुत्पन्न होते हैं। प्रत्येक जीव का स्थूल शरीर भिन्न होता है। स्थूल शरीरों का समष्टि विवक्षा से समष्टि स्थूल शरीर और व्यष्टि विवक्षा से व्यष्टि स्थूल शरीर है, ऐसा व्यपदेश है। समष्टि स्थूल शरीरोपहित चैतन्य ही विराट अथवा वैश्वानर है, व्यष्टि-स्थूल शरीररोपहित चैतन्य विश्व कहलाता है। इस स्थूल शरीर को अन्नमय कोश कहते हैं। ईश्वर-प्रज्ञ सुषुप्ति में आनन्द का अनुभव करते हैं, हिरण्यगर्भ-तैजस स्वप्न में वासना रूप सूक्ष्म विषयों का अनुभव करते हैं, और वैश्वानर-विश्व जाग्रत अवस्था में बाह्य इन्द्रियों द्वारा स्थूल विषयों का अनुभव करते हैं। समष्टि-व्यष्टि के ज्ञान में और उनसे उपहित चैतन्य का वन-वृक्ष तथा उनसे अवच्छिन्न चैतन्य के समान अभेद है।

श्रुति-युक्ति-अनुभव के आभास को आश्रित करके चार्वाकों ने आदि दार्शनिक पुत्र, शरीर आदि का आत्मा में अध्यास मानकर पुत्र, शरीर आदि का ही आत्मत्व प्रतिपादित किया है। पुत्र से आरम्भ करके शून्य पर्यन्त सभी विषयों का अनात्मत्व श्रुति और युक्ति द्वारा तथा अहं ब्रह्म इत्यादि विद्वानों का अनुभव विरोध होने के कारण।

विद्वानों द्वारा कार्य कारण से अव्यतिरिक्त कारणमात्र ही प्रतिपादित किया गया है। एवं सभी स्थूल शरीर ब्रह्माण्ड और स्थूल भोग्य वस्तु में स्थूलभूत पञ्चक मात्र होते हैं, सूक्ष्मभूत पञ्चक कारणभूत अज्ञानोपहित चैतन्यमात्र होते हैं। अज्ञान और उससे उपहित चैतन्य ईश्वर आदि और उपहित चैतन्य आधारभूत तुरीय ब्रह्ममात्र होता है। इस प्रकार अपवाद प्रदर्शित है। सृष्टि प्रक्रिया द्वारा जगत के कारण रूप में ब्रह्म निर्दिष्ट होता है।

अध्यारोप-अपवाद न्याय द्वारा तत्-त्वम् पदों का वाच्यार्थ-लक्ष्यार्थ प्रदर्शन सुकर होता है। जैसे समष्टि ज्ञान, ईश्वर, तुरीय और चैतन्य जब अभेद द्वारा प्रतिभासित होते हैं तब वह समुदाय उस पद का वाच्यार्थ होता है, अनुपहित तुरीय ब्रह्ममात्र ही उस पद का लक्ष्यार्थ है। एवं व्यष्टि ज्ञान प्रज्ञ, तुरीय और चैतन्य अभेद से प्रतिभासमान त्वम् पद का वाच्यार्थ होता है और अनुपहित तुरीय ब्रह्ममात्र ही त्वम् पद का लक्ष्यार्थ होता है।

टिप्पणी

अतः 'तत् त्वमसि' इस वाक्य से ब्रह्म-जीव का तत्वम् पद वाच्य का लक्ष्यार्थ तुरीय ब्रह्म ऐक्य का बोध होता है।

पाठान्त प्रश्न

1. बुद्धि आत्मा है, ऐसा किनका मत है?
2. कारण शरीर का सुषुप्ति नाम कैसे है?
3. समष्टि स्थूल शरीर उपहित चैतन्य का अभिधान वैश्वानर कैसे हैं?
4. जरायुज स्थूल शरीर कौन हैं?
5. पञ्चीकरण-त्रिवृत्करणों का परस्पर विरोधित्व है अथवा नहीं?
6. पृथिवी में कौन से गुण रहते हैं?
7. तेज में कौन से गुण होते हैं?
8. पञ्चीकरण के अनन्तर सभी भूतों का पञ्च-पञ्चात्मक होने से उसका अभिधान कैसे होगा?
9. प्राण क्या है?
10. व्यान क्या है?
11. देवदत्त नाम वायु कौन सी है?
12. समष्टि कारण शरीर का उत्कृष्ट उपाधित्व कहाँ से है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-22.1

1. असर्पभूत रज्जु में सर्पारोप के समान वस्तु में अवस्तु का आरोप अध्यारोप है।
2. रज्जु विवर्त सर्प का रज्जुमात्रत्व के समान वस्तु विवर्त अवस्तु का अज्ञान से प्रपञ्च का वस्तुमात्रत्व ही अपवाद है।
3. जिसमें आरोप होता है, वह अधिष्ठान है।
4. अधिष्ठान ज्ञान द्वारा आरोप्य की निवृत्ति होती है।
5. कारण के स्व स्वरूप को त्यागकर अन्यरूप प्राप्ति ही परिणाम है। और कहते हैं- 'सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदाहृत''।

6. अपने स्वरूप को त्यागकर ही कारण की अन्यरूप प्राप्ति ही विवर्त है। और कहा जाता है- ''अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदाहृत''।

7. ब्रह्म ही आरोप्य प्रपञ्च का अधिष्ठान है।

8. यह प्रपञ्च ब्रह्म का विवर्त है।

9. अध्यारोप-अपवाद न्याय का मुख्य प्रयोजन जगत के कारणरूप से तुरीय ब्रह्ममात्र का सूचन और जगत का मिथ्या प्रदर्शन है।

10. तत्त्वपदार्थ शोधन ही अध्यारोप-अपवाद न्याय का गौण प्रयोजन है।

उत्तर-22.2

1. अज्ञान ही जगत का परिणाम उपादान है।

2. ब्रह्म ही जगत का विवर्त उपादान कारण है।

3. अज्ञानं तु सदसद्भ्याम् अनिवर्चनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चित्।

4. लोहित-शुक्ल-कृष्ण अथवा सत्त्व, रजस् और तमस् गुणत्रय हैं।

5. अज्ञान अनुपलब्धि भिन्न द्वारा प्रत्यक्ष आदि प्रमाण पञ्चक द्वारा गृहीत होता है।

6. अज्ञान ही कारण शरीर कहलाता है, अखिल जगत् का कारण होने और ब्रह्मज्ञान द्वारा शीर्यमाण होने से।

7. समष्टि कारण शरीर उपहित चैतन्य ईश्वर है।

8. व्यष्टि कारण शरीर उपहित चैतन्य प्रज्ञ है।

9. कारणत्व अवस्था में स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चों के अभाव के कारण जीव आनन्द बाहुल्य को अनुभव करता है, कारण शरीर और अज्ञान कोशवत् ब्रह्म की अच्छादित करता है। अत: कारण शरीर आनन्दमयकोश कहा जाता है।

10. ईश्वर-प्रज्ञ उपहित चैतन्य का आधारभूत जो अनुपहित चैतन्य है वह तुरीय चैतन्य कहा जाता है।

11. आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति।

12. ईश्वर अज्ञान रूप उपाधि प्राधान्य से जगत का उपादान कारण होता है। और स्व चैतन्य प्राधान्य से जगत् का निमित्त कारण होता है।

उत्तर-22.3

1. तम: प्रधान होने से विक्षेप शक्ति विशिष्ट अज्ञान से आकाश आदि पाँच सूक्ष्म भूत उत्पन्न होते हैं।

टिप्पणी

2. आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों के सात्त्विकांश व्यष्टि से श्रोत्र-त्वक्-नेत्र-रसना-घ्राण नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं और मिलने से अन्तः करण उत्पन्न होता है।

3. संकल्पविकल्पात्मिका अन्तः करणवृत्ति ही मन है।

4. निश्चयात्मिका अन्तः करणवृत्ति ही बुद्धि है।

5. चित्त का बुद्धि में और अहंकार का मन में अन्तर्भाव होता है।

6. आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों के रजो अंशों से, व्यष्टि से वाक्-पाद-पाणि-पायु-उपस्थ नाम पाँच कमेन्द्रिया उत्पन्न होती हैं।

7. आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों के रजो अंश के मिलने से पञ्च प्राण उत्पन्न होते हैं।

8. प्राण-अपान-व्यान-उदान-समान पाँच प्राण हैं। किन्हीं के मत में नाग-कूर्म-कृकर-देवदत्त-धनञ्जय पाँच वायु हैं।

9. सूक्ष्मशरीर में सत्रह अवयव होते हैं। वे हैं- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि।

10. मन ज्ञानेन्द्रियों के सहित विज्ञानमय कोश होता है।

11. पञ्च प्राण और पञ्च कर्मेन्द्रियाँ मिलकर प्राणमय कोश होते हैं।

12. ज्ञानेन्द्रियाँ सहित मन ही मनोमयकोश है।

13. समष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य हिरण्यगर्भ है।

14. व्यष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य तैजस है।

उत्तर-22.4

1. आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों की पञ्चीकरण द्वारा स्थूलभूतों की समुत्पत्ति होती है।

2. आकाश आदि पाँच भूतों में प्रत्येक भूत दो प्रकार से विभक्त होकर, प्रत्येक भूत के आदि भागों को पुनः समान रूप से चार प्रकार से विभक्त करके, उन चारों आद्य भागांशों का स्वयं तथा स्व इतर द्वितीय अंशों के साथ योजन से पञ्चीकरण होता है।

3. सात ऊर्ध्व लोक हैं- भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य।

4. स्थूल शरीर चार प्रकार के हैं- जरायुज, अण्डज, उद्भिज, स्वेदज के भेद से।

5. सात अधोलोक हैं- अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल।

6. स्वेद से उत्पन्न यूक, मशक आदि के शरीर ही स्वेदज हैं।

7. समष्टि स्थूल शरीर उपहित चैत्न्य ही वैश्वानर, विराट कहलाता है।

8. विश्व।

9. मन, बुद्धि, अहंकार रूप चित्त चन्द्र-चतुर्मुख-शंकर-अच्युत द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

10. शून्यवादि बौद्धों का मत है।

11. अज्ञानोपहित चैत्न्य आत्मा है।

12. समष्टि ज्ञान, ईश्वर, तुरीय और चैतन्य जब अभेद से प्रतिभासित होते है तब वह समुदाय तत् पद का वाच्यार्थ होता है, अनुपहित तुरीय ब्रह्ममात्र ही तत् पद का लक्ष्यार्थ है।

13. व्यष्टि ज्ञान प्रज्ञ, तुरीय और चैतन्य अभेद द्वारा प्रतिभासमान होकर त्वम् पद का वाच्यार्थ होता है, अनुपहित तुरीय ब्रह्ममात्र ही त्वम् पद का लक्ष्यार्थ है।

।।बाइसवाँ पाठ समाप्त।।